[Vol-1, Issue-2, July-September 2023]
International Journal of Science and Social Science Research [IJSSSR] ISSN: 2583-7877

वैदिकसाहित्य में सन्निहित कृषि प्रक्रिया की उपादेयता

डॉ० त्रिपुर सुन्दरी

संस्कृत विभाग डी.ए.वी.पी.जी.कालेज, वाराणसी

ई-मेल : tripurvns18@gmail.com

वैदिक साहित्य में दीर्घदर्शी ऋषियों द्वारा सुचित्रित एवं सुनियन्त्रित जीवन पद्धति, स्थावर जङ्गमात्मक जगत् के आध्यात्मिक विषयों के अतिरिक्त कृषि, शिल्प तथा जीवन के अनेक वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान उपलब्ध होता है। जीवधारियों की मूलभूत आवश्यकता ''अन्न ''की महत्ता को घोषित करते हुए श्रुति का कथन है—**अन्नं वै प्राणाः** ।अन्न प्राणियों का जीवनाधार है तथा अन्न का मूल कृषि है। यदि अन्न तथाकृषि के तात्विक अभिप्राय की व्याख्या की जाए तो कृषि सृष्टि का मूलाधार तथा अन्न सृष्टि के विकास का हेतु है। ''**अन्नंसाम्राज्यानामधिपतिः**'' तैत्तिरीयोपनिषद् के नवें अनुवाक में अन्न उत्पादन एवं महत्त्व को बताते हुए ऋषि कहते हैं---

अन्नः बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः । आकाशे पृथिवी प्रतितिष्ठति । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्...।अन्न द्वै प्रजा प्रजायन्ते। याः काश्चपृथिवीश्रिताः । अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात् सर्वौषधमुच्यते। सर्व वै तै अन्नमारनुवन्ति ये अन्नं ब्रह्मोपासते।.... अन्नाद् भूतानि जायन्ते । जातान्यन्ने वर्धन्ते। अद्यतेअत्ति च भूतानि । तस्मादन्नं तदुच्यत इति । [१]

अन्न प्राणियों के जन्म, स्थिति, लय का साक्षात् करण है। जीव अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, अन्न ग्रहण द्वारा वृद्धि को प्राप्त करते हैं तथा अन्त में अन्न द्वारा ही अशित होकर लय को प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्वतः इस चयापचयात्मक जगत् में प्रत्येक प्रदार्थ किसी का अन्न है तथा किसी का अत्ता है। उपनिषदों में यह 'अन्नान्नाद' भाव के रूप स्वीकृत है। जीवभाव तथा अन्न का अविनाभाव सम्बन्ध है क्योंकि भोज्यभोजक परम्परा अनादिकाल से अनन्त काल तक व्याप्त है। सम्प्रति वैज्ञानिकों ने भी वैदिक अन्नान्नादभाव की अवधारणा को ही 'भोज्यभोजक श्रंखला' के रूप में व्यक्त किया है। अन्नमयकोश के वृद्धि भाव के लिए अन्नाहार की नित्य आवश्यकता लोकप्रसिद्ध है अस्तु नियमित रूप से अन्नोत्पादन को कर्मविशेष के रूप में अंगीकार किया गया। अन्न के उत्पादन एवं उससे सम्बन्धित समस्त भौतिक जगत् के पारस्परिक समन्वय के लिए वैदिक ऋषियों ने व्यापक उद्देश्य की पूर्ति करने वाली कृषि प्रणाली को मुख्य धारा में लाने की प्रेरणा दी है। यह पद्धति ग्रामीण समुदाय को प्राथमिक लक्ष्य में रखते हुए प्राकृतिक संरक्षण, सामाजिक सरोकार, आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने वाली प्रणाली है। जिसके अन्तर्गत पशुधन कल्याण, कृषक का हित, श्रमिक वर्ग के हित, उपभोक्ता को हित आदि के समग्र स्वास्थ्य तता भावी सुरक्षा को भी ध्यान रखा जाता है। इस कार्य में कृषक, श्रमिक, विक्रेता, उपभोक्ता, अनुसन्धाता, नीति निर्माता सभी का कृषि को दृढ़ बनाने में अन्यतम तथा महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषिप्रबन्ध विषयक वर्णन में प्रायः सभी पक्षों पर विचार किया गया है। राजा के दायित्व के अन्तर्गत कृष्यभूमि तथा बीज उपलब्ध कराना, कृषिविधि का अवेक्षण, कृषिकर का निर्धारण तथा आधान, सिंचाई की व्यवस्था तथा कराधान, धान्यसंग्रह कृषिविषयक अपराधों तथा दण्ड की विवेचना, ऊसर भूमि का उर्वरीकरण आदि भी परिगणित हैं।इसप्रकार भारतीय मनीषा द्वारा जीवन-पद्धति के वर्ण, आश्रय एवं पुरूषार्थ को अंगभूत घटक के रूप में कृषिकर्म को यज्ञ की कोटि में प्रति6ष्ठित किया गया है। वैदिक साहित्य में यद्यपि कृषिशास्त्रीय विधि तथा प्रविधि का मुख्यतः साक्षात् उल्लेख नहीं प्राप्त होता, किन्तु संहिताओं में यज्ञ के रूप में, ब्राह्मण तथा आरण्यक में यागों के अंगभूत कर्म के रूप में तथा उपनिषदों में तात्त्विक विवेचना में तात्त्विक विवेचना एवं शिक्षा के रूप में कृषि विषयक तथ्यों का उल्लेख प्राप्त होता हैं।विवेच्य विषय के विकास क्रम को कल्पित कर सौविध्य की दृष्टि से उपयोग, मुख्यतः कृषि के महत्व, स्वरूप, उत्पत्ति, विधि- प्रक्रिया एवं वर्धन, एवं संरक्षण उपलब्ध है।याज्ञिक विधियों में कृषि एक गौरवपूर्ण कार्य माना जाता था। इसलिए इन्द्र एवं पूषा देव को इसमें लगाया गया। **'इन्द्रः सीतां नि गृहणातु.....**।१ कवि एवं विद्वान् भी यह कार्य करते थे। आर्थिक दृष्टि से भी कृषि का बहुत अधिक महत्त्व था। आर्यों द्वारा कृषि से उत्पन्न अन्न ही आजीविका का साधन माना जाता था, यही कारण है कि वेदों में स्थान-स्थान पर देवताओं से वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ की गई और नदियों से भी कृषि को उपजाऊ बनाने का उद्धरण उपलब्ध है। ऋग्वेद के अक्ष सूक्त में कृषि की महत्ता का स्पष्ट निर्देशन है-

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे दि चष्टे सवितायमर्यः । [४] ऋग्वेद में ही अन्यत्र कृषि कर्म के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि कृषि करके सम्मान एवं समृद्धि प्राप्त होती है, ऋषियों की भावनाओं में मानव कल्याण के लिए सर्वप्रथम देवताओं ने कृषि कर्म प्रारम्भ किया। ऋग्वेद के अनुसार अश्विन देवों ने सर्वप्रथम कृषि का कार्य प्रारम्भ किया, उन्होंने मनु को हल चलाना सिखाया और यव की खेती करने की शिक्षा दी। ऋग्वेद में ही उल्लेख मिलता है कि विष्णु ने भुमि को कृषि योग्य बनाया। अथर्ववेद में पृथु वैन्य नामक राजा को हल से भूमि जोतने का अविष्कारक माना गया है। साथ ही अथर्ववेद की उक्ति ''**माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः ।"** यह स्पष्ट करता है कि वैदिक काल में कृषि को अर्थ तंत्र का आधार मानकर सस्यश्यामला भूमि को सहस्र अथर्ववेद में एक वर्णन है कि विराट् ब्रह्म जब मनुष्यों के पास पहुँचा तो उन्होंने इसे इरावती (अन्नसमृद्धि) कहा। इस इरावती का दोहन कर उन्होंने कृषि और सस्य (अन्न) प्राप्त किया। कृषि और अन्न से ही मनुष्यों का जीवन चलता है। कृषि कार्य में निपुण लोग कृष्टराधि और उपजीवनीय अर्थात् सफल आजीविका वाला कहा जाता था।" कृषि के विज्ञाता को 'अन्नविद्' नाम देते हुए सर्वप्रथम उनके द्वारा कृषि नियम बनाने का वर्णन है मिलता है। पुराणों में भी वर्णित है कि कृषक कृषि की सिंचाई के लिए मुख्य रूप से वर्षा पर ही निर्भर थे अत: तत्कालीन समाज में यज्ञ का सम्बन्ध कृषि से जोड़ा गया। और कृषि को मानव कल्याण का साधन माना गया है। ऋग्वैदिक ऋषि कृषि का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहता है—

कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः।

वद्र ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभिष्यात। [८]

अर्थात् जो कृषक हल चलाता है, वह अन्न का भोग करता है और जो ऐसा न ही करता है, वह भूखा रहता है।वैदिकसाहित्य में **''सुसस्या कृषिष्कृधि''**'निर्देश द्वारा ऋषियों ने कृषि महत्त्व का भूरिशः प्रतिपादन किया है। ऋषि पाराशर ने कृषि महत्ता प्रतिपादन करते हुए कहा है— **कृषिर्धन्या कृषिमेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः** अर्थात् कृषि सम्पत्ति और मेधा प्रदान करती है और मानव जीवन का आधार है।

मुख्य साधनों में से वैदिकसाहित्य में ऋषियों ने कृषि को जीवनयापन के में से एक माना है सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में कृषि के स्वरूप का यथोपलब्ध विवेचन इस प्रकार है

ऋगादि संहिताओं में इष्टसाधन के लिए प्रत्येक कर्म को यज्ञ विज्ञान की विशेष पद्धति द्वारा सम्पादित किया गया है। इस दृष्टि से कृषिकर्म का साक्षात् प्रस्तुत विधान करने वाले कृषिसूक्त तीनों संहिताओं (ऋग् यजुष् तथा अथर्व) में विशेष उल्लेखनीय है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में लाङ्गल-योजन, कर्षण, वपन, सस्यलवन आदि कृषि के स्वरूपों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त कृषि विषयक परिभाषिक शब्दों के माध्यम से सूर्य, ब्रह्माण्ड आदि आधिभौतिक तत्त्वों के स्वरूप की व्याख्या की गई है। जिससे यह आभाषित होता है कि कृषि सम्बन्धी विषयक तथ्य दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। 'ब्रह्मौदन सूक्त' में मूसल, उलूखन, शूर्प, शूर्पग्राही, अपविनक्, कण, तण्डुल, तुष, फलीकरण,, अभ्र, सीता, कुल्योपसेचन, खल, स्फ्य आदि शब्दों को उपमान के रूप में किया गया है।[१०]वपन सूक्त में

सविता आदित्य, रूद्र, वसु, अदिति, आपः, प्रजापति, सोम, वरुण, आदि देवताओं द्वारा दिव्यवपन का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी सूक्त से वपनविधि का सङ्केत प्राप्त होता है। तद्नुसार उष्णक्षुर अथवा क्षुर जैसी नुकीली वस्तु से भूमि में स्थान बनाकर वपन की परम्परा थी। [११]वेदों में कृषि के पृथक-पृथक् कार्यों के विशेषज्ञ कर्मकारों की चर्चा उपलब्ध होती है, जिससे ज्ञात होता है कि जोतने वाले कीनाश, बीजबोने वाले वप, तुषभेद करने वाले धान्यकृत तथा सिंचाई करने वाले पृषत्क कहलाते हैं। [१२] संहिताभाग में निर्दिष्ट कृषि स्वरूप संघटन नियोजन पर आधारित है। यव तथा व्रीही प्रमुख धान्य है जो सम्भवतः ग्रैष्म, तथा शारदीय धान्यों में प्रमुख आहारान्न के रूप में मुख्यरूप से प्रयुक्त किये जाते थे। इसके अतिरिक्त तिल, माष, मुद्ग, नीवार, गोधूम, तन्दुल, मसूर, श्यामाक, सर्षप, शण, प्रियङ्गु, इक्षु आदि की कृषि का भी प्रचलन था। [१३] सस्यवृद्धि के लिए उर्वरकों का प्रयोग किया जाता था। मुख्यतया गोमय, करीष, थे शकृत् आदि उर्वरक थे। यह क्षेत्रसाधः पद से ज्ञेय है। [२०] तैत्तिरीय संहिता में भी भूमिभेद, सांवत्सरिक कृषि, भूमिगत जलयान आदि विषयों का विवेचन प्राप्त है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथब्राह्मण में कृषि का स्वरूप सुनियोजित तथा विस्तृत विवेचत प्राप्त होता है। चार क्रम में कृषि का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है।

कृषन्तःवपन्तःलुनन्तःमृणन्तः।[२१]

शतपथ ब्राह्मण में ही अनेक प्रकार अन्न का उल्लेख २१मिलता है। व्रीही की प्रमुख प्रजातियाँ तण्डुल, हास्य तथा प्लाशुक नामों से उल्लेख प्राप्त होता है। जिसमें प्लाशुक शीघ्र पकने वाली ब्रीही प्रजाति थी तथा प्रश्न: यज्ञ में प्रायः प्रयोग की जाती है।

प्लाशुकाः पुनः प्ररूढाः व्रीहयः[२२]

अन्य विविध धान्यों में इन्द्रवय, गोधूम, तिल, माष, प्रियङ्गु नाम्ब, गवेधुक, नीवार, इक्षु आदि की कृषि भी ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रचलित थी। सिंचाई के लिए वर्षा के अतिरिक्त कूप, सरोवर, सूद, सरस: ह्रद आदि जलागारों तथा नदियों के जल का उपयोग करने का उल्लेख है ॥ [२३]

इस प्रकार राजसूय, अश्वमेध एवं सीता यज्ञ के अन्तर्गत कृषि के स्वरूप का विशुद्ध विवेचन ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।

आरण्यक ग्रन्थ वैदिक साहित्य का आध्यात्मिक भाग है, अतः आरण्यकों में प्रत्यक्ष रूप से कृषि के स्वरूप का वर्णन अधिक नहीं प्राप्त होता है किन्तु कृषि कर्म समाज में प्रतिष्ठित तथा विकसित दशा में वर्णित है। [२४] ऐतरेय आरण्यक की उक्ति 'कृषि का मूल आधार प्राणियों के प्राणित्व का हेतु है। [२५]

कृषि की महत्ता का प्रतिपादन करती है। कतिपय साक्ष्यों से भी यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आरण्यक में भी आर्थिक रूप से सुदृढ़ आधार के रूप में कृषि एवं पशुपालन प्रचलित था।

उपनिषदों में सभी विद्याओं का उपदेश ब्रह्मविद्या के आङ्गिक रूप में किया गया है। उपनिषद् समस्त वैदिक वाङ्मय के सारभूत निधि है। प्रश्नोपनिषद्, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, मुण्डक तथा बृहदारण्य-कोपनिषद् कृषि के स्वरूप विवेचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अन्नोत्पत्ति की तात्विक व्याख्या करते हुए कृषि विषयक ज्ञान के मूल ब्रह्म को तपोजन्य चिति के परिणाम के रूप अन्नोपत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन ऐतेरेय, मुण्डक एवं छादोग्योपनिषद् में उपलब्ध होता है—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमुप जायते । [२६.]

तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न तथा कृषि की प्रतिष्ठा व्यक्त करने हेतु अनेकों उद्घोष है—

"अन्नं ब्रह्म ।अन्नं बहु कुर्वीत ।

यया कयापि विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् ।। [२७]

ये उद्घोष कृषि के प्रयोजन का सङ्केत तथा कृषि की वैविध्यपूर्ण प्रणाली है। छान्दोग्योपनिषद् में व्रीही, यव, ओषधि, वनस्पति का, तिलु, माष आदि उल्लिखित है। [२८] तैत्तिरीयोपनिषद् में अन्न के तात्त्विक स्वरूप तथा अन्नोत्पत्ति विज्ञान का विवेचन है। ऐतेरयोपनिषद् में भी अन्नोत्पत्ति ओषधि वनस्पति का तात्त्विक तात्पर्य भी कृषि के स्वरूप को सङ्केतित करते हैं ||[२९]

षड्वेदाङ्गों में परिगणित निरुक्त में निर्वचन के प्रसङ्ग में स्पष्ट रूप से कृषि विषयक पारिभाषिक शब्द का अर्थ उल्लिखित है। उदाहरण स्वरूप ''बीज शब्द का निर्वचन **''वेत्ति ''प्रजायते गच्छत्यनेनानृण्यं पितेति वा''** [३०] कृष्य बीजों के जीवभाव को व्यक्त करता है कल्पवेदाङ्ग में कृषि के स्वरूप का साक्षात् उल्लेख प्राप्त होताहै। पारस्करगृह्यसूत्र तथा श्रौतसूत्रों में कृषि से सम्बन्धित धार्मिक कृत्यों का विस्तृत विवेचन है। वहाँ सीतायज्ञ, लाङ्गलयोजन, आग्रयणेष्टि आदि कर्मकाण्ड कृषि से सम्बन्धित हैं। प्रथम बार कर्षण के लिए सुयोग्य तथा प्रशिक्षित कृषि कर्मवेत्ता के निर्देशन में प्रवृत्त होने का निर्देश है। गृह्यसूत्रों के समान धर्मसूत्रों में भी प्राय: समान ही कृषि विषयक विवेचन प्राप्त होता है। श्रौत सूत्रों में चातुर्मास्ययागन्तर्गत चार पर्वों वैश्वदेव, वरुण प्रधास, साकमेध तथा शुनासीरीय में कृषि समृद्धि के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों का विवेचन है।

वैदिक साहित्य में पुराणेतिहास में कृषि स्वरूप का विशद वर्णन मिलता है। कृषि की दृष्टि से अग्निपुराण, आदिपुराण, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण प्रमुख हैं।ब्रह्मपुराण के अनुसार जब कल्पवृक्षों के अभाव में प्रजा अन्नाभाव से त्राहि-त्राहि करने लगी तो सर्वप्रथम राजा पृथुवैन्य ने उच्चावच से युक्त तथा शुष्क अतः कठोर भूमि में कर्षण एवं सेंचन की योजना की तथा आरण्यक ओषधि का विभाग तथा कृषि उपाय का अनुसंधान किया। विष्णुपुराण में ग्राम्य तथा आरण्यक ओषधि का विभाग तथा व्रीही, यव, गोधूम, अणु, तिल, प्रियङ्गु, उदार, कोरदूष, सतीनक (मटर), माष, मुद्ग, मसू, निष्पाव, कुलत्थ, आढक्य, चणक, शण आदि धान्यों विवरण उपलब्ध होता है।[३१] इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय कृषि का विस्तार हो चुका था तथा प्रभूत मात्रा में विविध धान्यों की कृषि की जाती थी। अग्निपुराण में गृहस्थ के कृषि कर्माधिकार, हलों में वृषभसंख्या, भूमिभेद तथा त्रिधातुमयत्व, उद्यानरचना-विधि, वृक्षारोपण में अन्तर (मध्य-दूरी), वृक्षसेंचन की विधि, बीज वृद्धि के लिए उर्वरकों का प्रयोग इत्यादि कृषि के स्वरूप का वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है। वृक्षारोपण तथा उद्यानशास्त्र भी कृषि के ही अङ्ग हैं, इस दृष्टि से कृषिकर्म का उत्तरोत्तर विकास क्रम पुराणों में सुनियोजित तथा वैज्ञानिक रूप से दृष्टिगत होता है।

आर्षकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित रामायण तथा महाभारत इतिहास काव्य के रूप में भी प्रसिद्ध है। दुर्भिक्षाकाल में राजा जनक द्वारा हलकर्षण आख्यान कृषि का समुन्नत स्वरूप दर्शाता है अदेवमातृक कृषि का प्रबंध था। कृष्याकृष्य भेद से भूमि का विभाग करते हुए कृषि योग्य भूमि निर्धारित की जाती थी तथा जोती हुयी अथवा उत्तम कृषि युक्त भूमि प्रशस्त मानी जाती थी। ३२ शालि उस समय का महत्त्वपूर्ण धान्य था। शालीपादपों से सस्यश्यामल भूमि का शरद् ऋतु में वर्णन अनेकशः उपलब्ध होता है। रामायण तथा महाभारत में वर्णाश्रम धर्म के रूप में कृषि की चर्चा प्राप्त होती है। कृषि एवं पशुपालन को अवेक्षणीय कहा गया है। क्षण मात्र के भी प्रमाद से कृषि तथा पशु नष्ट हो सकते हैं।।३३ महाभारत के नायक श्रीकृष्ण स्वयं गोपाल एवं बलराम हलधर के नाम से प्रसिद्धि पुराणेतिहास में वर्णित पशुपालन एवं कृषि के स्वरूप की चरम उन्नति के लिए प्रथित है।

वैदिक साहित्य में कृषि उत्पत्ति विषयक रोचक प्रसङ्ग उपलब्ध होते हैं। सम्पूर्ण विश्व की अन्नानादभाव जन्य स्थिति की नैसर्गिक अवस्था के रूप में प्रजापति में प्राण, वाक्, मन, दुग्ध, हुत, अहुत तथा धान्यादि सात अन्नों को मेधा तथा तप से उत्पन्न किया है। आरम्भ में प्रकृति प्रदत्त वनस्पति को आहार के रूप में ग्रहण कर प्राणी अपनी अशना-पिपाशा को शान्त करते थे। स्वतः उत्पन्न वनस्पति को कल्पवृक्षों के रूप में जाना जाता था। कल्पवृक्षों से प्राप्त फल, पुष्प, कन्द आदि भोज्य पदार्थों द्वारा मानव की आवश्यकता तब तक पूर्ण होती रही जब तक पृथिवी की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति उनके उत्पादन में स्वयं समर्थ रही।धीरे-धीरे कल्पवृक्षों ५७ का अभाव हो गया तथा कालक्रम से ऋतुओं का आरम्भ हुआ । वर्षा की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई तथा पृथिवी से सुप्त बीजों को पृथ्वी के गर्भ में स्थित ऊष्मा और पर्जन्यजन्य वर्षा के संयोग से नवजीवन प्राप्त हुआ। मृत्तिका के आवरण को भेद कर वे सस्य के रूप में 'अविरल' रूप प्ररूढ़ हुए। मानव ने अपनी क्षुधा शान्ति के लिए भोग करना आरम्भ किया। बार-बार काटने से वे तब तक बार-बार अङ्कुरित तथा वृद्ध होते रहे, जब तक पृथिवी की बाहरी सतह को पर्याप्त जल, प्रकाश एवं वायु प्राप्त होते रहे और मृत्तिका कठोर नहीं हुई फलस्वरूप ‘अकृष्टपच्य धान्यादि की उपलब्धि हुई।

कालक्रम में जनसंख्या वृद्धि होने से अत्यधिक उपभोग के कारण अकृष्टपच्य सस्य भी विरल हो गये, तथा भूमि आहारजन्य आवश्यकता की पूर्ति करने में असमर्थ हुई। ऋग्वेद के रोचक प्रसंग में यह वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम देवगण आगे आए, उनके पास अपनी परशु थी। उन्होंने वनों को काटकर साफ किया। उनके पास उनके कुछ सहयोगी प्रजाजन थे, उन्होंने उपयोगी लकड़ियों को किनारें रख दिया तथा कृपीट (घास-फूँस) को जला दिया। भूमि को समतल कर कृषि कार्य की उत्पत्ति की-

देवास आसन् परशँरबिभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विद्भिरायन्।

नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु, यत्रा कृपीटमनु तद् दहन्ति ।। [३४]

अथर्ववेद के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि वैन्य पृथु ने प्राकृतिक परिस्थितियों तथा अन्नोत्पत्ति के रहस्य को समझा। उन्होंने ने ही दिव्य दृष्टि द्वारा सर्वप्रथम उच्चावचों से युक्त कठोर भूमि को कर्षण द्वारा मृदु तथा उर्वरा बनाने की दिशा में तत्पर हुए। अथर्ववेद का ही कथन है वैवस्वत मनु की परम्परा में वेन का पुत्र पृथी राजा हुआ उसने कृषि की और अन्न उत्पन्न किया—

"तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम्। तां पृथ्वी वैन्योऽधोक्, तां कृषिं सस्यं चाधोक् ।।[३५]

राजा पृथु न क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए प्रजा को संगठित कर धनुष की प्रत्यञ्जा अथवा क्षात्र बल के द्वारा पृथिवी पर कर्षण कराया था तथा पृषत्कों द्वारा सिंचन का कार्य करवाया। मृद हुई भूमि पर सस्यान की प्राप्ति के निमित्त कृषि की उत्पत्ति हुई। 'पृथिवी दोहन' का यह प्रथम उपक्रम था, जिसमें पृथिवी के गर्भ में स्थित नाना रत्नों, धातुओं, खनिज पदार्थों के साथ ही सस्य बीजों की भी प्राप्ति हुई। इस प्रकार कृषि की उत्पत्ति यज्ञ के रूप में हुई। सेंचन के लिए वर्षाजल को अभी

ष्ट परिमाण तथा अनुकूल काल में प्राप्त करने हेतु वृष्टि के रहस्य को ऋषियों अन्तर्दृष्टि से मंत्र साक्षात्कार द्वारा किया। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ से अग्नि, अग्नि से धूम, धूम से अभ्र तथा अभ्र से वृष्टि होने वर्णन है । [३६] तदुपरान्त ऋषियों ने स्वयं प्ररूढ़ व्रीही, यव, को सस्य के रूप में प्राप्त किया। अतः यज्ञ-शेष के रूप में सर्वप्रथम इन्हीं धान्यों का ग्रहण किया तथा कृषि की उत्पत्ति की; क्योंकि कृषि से अन्न उत्पन्न होने पर ही सभी जीवधारियों का जीवन निर्भर रहता है। अथर्ववेद की उद्घोषणा है—

'ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति । [३७]

वैदिक साहित्य में परिगणित ब्राह्मण ग्रन्थों में कृषि की समस्त प्रकियाओं का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित कृषन्तः वपन्तः लुनन्तः मृणन्तः ३८ ये सार शब्द कृषि विधि का उलक्षण करते हैं। क्रमशः कृषन्तः का अर्थ है- क्षेत्र में जुताई करना, वपन्तः— बीज बोना, लुनन्तः—पके खेत की कटाई करना, मृणन्तः - मड़ाई करके स्वच्छ अन्न को प्राप्त करना। ऋग्वेद के प्रथम एवं दशम मण्डलों में भी बुआई, जुताई फसल की मड़ाई आदि का वर्णन है तथा चतुर्थ मण्डल में भी कृषि कर्म का वर्णन है काठक संहिता में भी २४ बैलों द्वारा हल खींचे जाने का' वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में हल का 'सीर' के नाम सेउल्लेख है। अथर्ववेद के वर्ण्य विषय पर विस्तृत रूप से दृष्टिपात करें तो कृषि-प्रक्रिया का विशद् विवेचन इस प्रकार है-

कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ।

यस्मान्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।। ३९ भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे। यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।। [४०]

उत्तम कृषि की प्रार्थना के साथ उर्वर क्षेत्रों को हलों से जोतकर बीज बोने योग्य बनाने की प्रक्रिया का अथर्ववेद में स्पष्ट अवबोधन है—

शुनं सुफालां वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।

शुनासीरा हविषा तोषमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ।[४१] उत्तम भूमि के साथ ही उत्तम बीज,हल,बैल, तथा किसान को संकेत करने के साथ कृषिकर्म में उपयोगी साधन यन्त्र के प्रति श्रद्धाभाव का निर्देश है—

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः ।

वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ।। [४२]

कृषि कर्म में उपयोगी साधन-यन्त्रों से दृढ़तापूर्वक अन्न आदि उत्पन्न के साथ अपने-अपने कृषि प्रक्रिया में लगते हुए क्षेत्र से रोगनाशक ओषधियों को उत्पन्न कर मनुष्य से सुप्रबन्ध करने का आदेश है—

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यः ।

नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्, क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु॥ [४३]

कृषि कर्म करने के लिए साधन एवं उपकरणों के रूप में अन्यतम हल को बताते हुए उसके प्रयोग विधि का सङ्केथ हैं-

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ [४४]

प्रकृति और देवताओं की शक्तियों पर विश्वास रखने वाले धैर्यशाली बुद्धिमान् कृषक लोग सुख प्राप्त करने की कामना से कृषियन्त्र हलों को खेतों में जोतते और जुओं को पृथक्-पृथक् करते हैं कृषि यन्त्र को व्यवस्थित करके क्षेत्र में बीजवपन की प्रक्रिया निर्देशित है-

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् । विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत सृण्यः पक्वमा यवन्॥ [४५]

खेतों में हल जोते, जुओं को फैलाएँ, अपनी कृषिभूमि को अच्छी तरह से तैयार करने के पश्चात् उसमें बीजरोपण करें, इससे अन्न की उपज भरपूर होगी, प्रभूत धान्य उत्पन्न होगा और परिपक्व होने के पश्चात् धारदार दरातरूपी शस्त्र से निकाले। कृषिकर्म में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख साधनभूत लाङ्गल (हल) के निमार्ण का भी निरूपण है—

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।

उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम् ।।[४६]

सुखकारक खेती के निमित्त हल में लोहे का फॉल (त्सरू) लगा हो, लकड़ी की मूँठ हो, जिसे पकड़कर हल ठीक प्रकार से चलाया जा सके। हल में एक लम्बो मोटा बाँस (ईशा) बाँधा जाता है जिसके जुआ पर रखकर रस्सियों से बैलों का गला बाँधने का उल्लेख है-

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामदिङ्गय ॥ [४७]

हल के माध्यम से ही भूमि सहज बन पाती है और रथ वाहन सरलता से चलते हैं तथा गो, बैल, भेड़, बकरी, अश्व, स्त्री-पुरुष आदि समस्त प्राणियों को उत्तम घास और धान्यादि की प्राप्ति हल से ही होती है। हल के द्वारा सुखपूर्वक कर्षण कार्य हो—शुनासीर देव से समृद्धि की कामना है।

जोती हुई भूमि के अभिनन्दन का भी विधान है-

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ।।[४८]

कृषि योग्य भूमि को घी और शहद के द्वारा विधिपूर्वक सिञ्चित करने से जलवायु की अनुकूलता प्राप्त होती है-

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा न सीते पयसाभ्यावव‍ृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना । ।[४९]

कृषि प्रक्रिया में अभिमन्त्रित भूमि के यज्ञिय अन्न के योग्य और भय से मुक्त का वर्णन है—

यद् यामं चक्रुर्निखन्नतो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो विद्यया । वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥ [५०]

यजुर्वेद में भी एक सूक्त में कृषि के लिए अन्नोत्पादन के कारण स्वरूपा पृथिवी तथा उसी पर सवैश्वर्य युक्त ईश्वर सविता से उत्पन्न कृषिकर्म की प्रार्थना की गई है—

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म [५१]

अथर्ववेद में कृषि भूमि की प्रार्थना में ऋषि का उद्बोधन है— **तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युयजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥** [५२]

कृषि प्रक्रिया में वृष्टि के जल की महत्ता बताते हुए इन्द्रदेव से वृष्टि के माध्यम से बीजों को खेतों में दृढ़त से भूमि में जमाने की प्रार्थना की गयी है—

इन्द्रसीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।।[५३]

उपयुक्त समय पर कृषि में जल-सिञ्चन अमृत के औषधियों के समान होता है। कृषि के निमित्त सञ्चित जल तथा अतिरिक्त साधन जैसे— नहर, नालियों, तालाब के माध्यम से जल का प्रबंध उपयोगी है। यजुर्वेद में जल-संसाधन के सभी प्राप्त स्वरूपों को नमन करते हुए उनके अनुकूलन की प्रार्थना है। ऊर्जा संसाधन को प्रमुख स्रोत सूर्य तथा कृषि के लिए फसलों को स्वस्थ एवं सुरक्षा प्रदान करने वाले वायु के अनुकूलन तथा वनस्पतियों के द्वारा आकाश में गति करने के कारण पञ्चमहाभूतों के माध्यम से कृषिप्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने की प्रेरणाएँ भी अर्थर्ववेद में प्राप्त होती है। ये समस्त चराचर जगत् के कल्याण के अक्षय स्रोत हैं। इनके सन्तुलन से ही उत्पादन की श्रेष्ठता, साधनों का स्थायित्व एवं कृषि के वर्धन आदि अन्य उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव है।

ऋषियों की पवित्र वाणी से निःसृत वैदिक उपयोग साहित्य में वर्णित कृषि प्रक्रिया का अनुपालन कर मनुष्य व समाज शुद्ध अन्न से पोषित हो दीर्घ आयु को प्राप्त करता था क्योंकि वैदिक कृषि प्रक्रिया के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृषि से ही समाज को स्वस्थ आहार प्राप्त होता है। समाज कृषि प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण घटक है क्योंकि वह उत्पादन का क्रेता तथा उपभोक्ता है। उपभोक्ता के लिए उसका स्वास्थ्य एवं क्रय मूल्य दोनों महत्त्व है। क्योंकि लागत से ही मूल्य प्रभावित होता है, अधिक मूल्य वाले रासायनिक उर्वरक बीज, कीटनाशक से उत्पन्न अन्न की लागत कई गुना बढ़ जाती

है, व्यापारिक लाभ यातायात, मशीनीकरण से भी लागत पर प्रभाव पड़ता है— रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों से हमारे खाद्यान्न प्रदूषित हो गये है। हमारे देश में हरितक्रान्ति के पश्चात् कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग ने मानव समाज तथा पारिस्थिति की तन्त्र-प्रकृति के स्वरूप को अपूरणीय क्षति पहुँचायी है। भारत में बिकने वाले खाद्यानों तथा फल-सब्जियों में अन्तर्राष्ट्रीय मानको की तुलना में २००% कीटनाशक पाये गये हैं। [५४] राजस्थान उच्च न्यायालय ने एक दैनिक समाचार-पत्र में प्रकाशित जानकारी को जनहित याचिका मानते हुए सरकार के समक्ष उत्तर प्रति उत्तर किया। विशेषज्ञों का मानना है कि २०० सेन्टीग्रेट पर उबालने पर भी कीटनाशक तत्त्व नष्ट नहीं होते हैं तथा हमारा भोजन मात्र ४० से ६० सेन्टीग्रेट पर ही पकता है। खेतों में काम करने वाले नारियों तथा उनके बच्चों में तथा चारे को खाने वाले पशुओं के दुग्ध से मनुष्यों में यह लगातार प्रवेश कर रही है। इन कीटनाशकों के दुष्प्रभाव स्वरूप मनुष्य का शरीर लगातार कमजोर हो रहा है एवं उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता घटती जा रही है। वैदिक साहित्य में वर्णित कृषिप्रक्रिया प्राकृतिक कृषि को प्रोत्साहित करती है। वैदिक कृषि का सामाजिक उपयोग मुख्य रूप से यही है कि समाज को कम मूल्य पर स्वस्थ आहार मिलें क्योंकि स्वस्थ आहार से ही सांस्कृतिक और राष्ट्रिय चरित्र का निर्माण सम्भव है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।। [५६]

वेद समाज को स्वस्थ, समृद्ध एवं समुन्नत बनाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वैदिक कृषिप्रक्रिया में प्रकृति, किसान, पशुधन तथा समाज के परस्पर समानता पूर्ण उपकार्योपकारक अन्तर्सम्बंध है। दोनों का समन्वित विकास होता है। अतः वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध कृषि प्रक्रिया सामाजिक दृष्टि से उपयोगी है।वेदों में आख्यायित कृषि प्रक्रिया आवश्यकता, उत्पादन एवं वितरण नैतिक आहार प्रदान करती है। वैदिक दृष्टि समाज को स्वस्थ,म्पन्न बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है। वैदिक कृषि प्रक्रिया में प्रकृति, कृषक, पशु तथा समाज के परस्पर समानतापूर्ण उपकार्योपरकसम्न्ध है ।कृषि की यह प्रक्रिया सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में अथवा कहे कि वितरण व्यवस्था में समन्वित प्रबन्ध की चेतना को जगाती है। वैदिक भावना में 'सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय' की कर उद्घोष है, वहां सभी वर्ग के लोग पवित्र मन से अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। उनके लिए कृषि भी एक यज्ञ स्वरूप है जो सीतामज्ञ, लाङ्गलअभियोजन आदि नामों से अभिहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

१. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली अनुवाक -९, ब्रह्मानन्द वल्ली-द्वितीय अनुवाक

२. अथर्ववेद- ३/१७/४

३. अथर्ववेद- ३/१७/१

४. ऋग्वेद- १०/३४/१३

५. अथर्ववेद- १२/१/१२

६. अथर्ववेद (८/१०/२४)ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति

७. अथर्ववेद—८/१०/२४ कृष्टराधिरुपजीवनीयों भवति।

८. ऋग्वेद- १०/११७/७

९. ऋषि पाराशर

१०. अथर्ववेद—६/६८/१.३

११. अथर्ववेद वपन सूक्त – ६/

१२. ऋग्वेद–१०/९४/१३, १०/१९/५.६, अथर्ववेद० १२/३/१३

१९. यजुर्वेद – १८/२, अथर्ववेद ६/१४०/२

२०. अथर्ववेद- ३/१३

२१. शतपथब्राह्मण- (१/६/१३)

२२. शतपथब्राह्मण— (५/३/३/२)

२३. शतपथब्राह्मण—८/७/३/२१,१३/५/४/९,११/५/१/४

२४. ऐतेरय ब्राह्मण-५/१/१,५

२५. ऐतेरय आरण्यक – २/१२

२६. मुण्डकोपनिषद् — २/८

२७. तैत्तिरीयोपनिषद्— ब्रह्मानन्द वल्ली

२८. छान्दोग्योपनिषद्—५/१०/५६

२९. ऐतरेयोपनिषद् — ३/१०

३०. निरुक्त- २/२/१५

३१. विष्णुपुराण- १ / ६ / २०.२२

३२ . रामायण- २/१००/४१,३१

३३. महाभारत उद्योग पर्व – १ / ९१

३४. ऋग्वेद- १०/२८/८ अथर्ववेद – ८/१०/११ ३५.४०.

३६. शतपथब्राह्मण— ५/३/१७ ३७. अथर्ववेद – ८/१०/१२

३८. शतपथब्राह्मण— १/६/१/३

३९. यजुर्वेद – ९/२२ अथर्ववेद – १२/१/४२

४१. अथर्ववेद – ३/१७/५

४२. अथर्ववेद – २/८/४

४३. अथर्ववेद—२/८/५

४४. अथर्ववेद – ३/१७/१

४५. अथर्ववेद – ३/१७/२

४६. अथर्ववेद- ३/१७/३

४७. अथर्ववेद- ३/१७/६

४८. अथर्ववेद- ३/१७/८

४९. अथर्ववेद- ३/१७/९

५०. अथर्ववेद-६/११६/१

५१. अथर्ववेद-७/६/४

५२. अथर्ववेद—८/१०/८

५३. अथर्ववेद- ३/१७/४

५४. राजस्थान पत्रिका, ११ फरवरी २००४

५५. वेदविद्या-अष्टदशाङ्क, पृ० १३५